श्रद्धांजलि

हिन्दी ADDA

प्रेमपाल शर्मा

श्रद्धांजलि

https://www.hindiadda.com/shraddhanjali/

मैं उस पर कहानी लिखना चाहता था।

कई वर्षों तक यह विचार मेरे अंदर चहलकदमी करता रहा कि बात कैसे आगे बढ़े। आँखों में आँखें डालकर उसकी आँखें बताना चाहती थीं अपनी कहानी। मुझे इतना भर पता था कि पड़ोस के चौधरी की सेवा के लिए इसे रखा गया है। पिछले दस-बारह साल से।

वो मुझे अक्सर बालकॉनी में दिख जाती थी। उम्र लगभग पचास बरस? कुछ कम भी हो सकती है। गदराया बदन, चमकीली आँखें। बंगाली में ही कुछ-कुछ बोलते, बतियाते हुए। कभी-कभी फ्लैटों की चारदीवारी के पास सटी पान की दुकान तक ऊँची आवाज में संवाद करते हुए। पता नहीं उसे कैसे पता था कि कौन-कौन बंगाली लड़के, मजदूर दुकान के आस-पास से गुजरते हैं। वह दूर से ही आवाज लगाती जोर-जोर से बतियाती, हँसती, डाँटती, tags - freexxx.cc सुझाव देती और तुरत-फुरत फिर अंदर चली जाती। शायद मालिक या मालकिन के इशारे पर। मेरे लिए पहेली की तरह था यह सब।

उससे परिचय की कई परतें हैं। जब मैं इस फ्लैट में किराए पर आया तो कई दिन तक जैसे महानगर में होता है, कोई संवाद नहीं हुआ। फिर संडे को हमने एक-दूसरे को देखा। मैं कपड़े धोकर सुखा रहा था। उसे यकीन हुआ कि हो न हो मैं इस घर का नौकर हूँ। उसने खुद पहल कर बात करनी चाही - बंगाली में ही। जिसके भाव थे 'कहाँ से हो, प्यारे! क्या-क्या काम करते हो? दिन में कहाँ चले जाते हो? इस घर में और कौन-कौन हैं?'

फिर धीरे-धीरे तार जुड़ते गए,

'आप कहाँ से?'

'वीरभूमि।'

'बंगाल में या बिहार में?'

वह क्या जवाब देती? मुझे भी पक्का नहीं पता था कि नक्शे में वीरभूमि कहाँ है।

वीरान बालकॉनी में मानो उनकी परछाई अभी भी खड़ी है कुछ सुनने, बतियाने के लिए।

मनुष्य कितना भी अकेलेपन में शांति की तलाश करे सच्ची शांति दुनिया के साथ दुख-दर्द बाँटने में मिलती है।

बालकॉनी में खड़कन के साथ ही हम आ खड़े होते।

वह कुछ कहना चाहती थी।

मैं कुछ सुनना चाहता था।

लेकिन कैसे? जब मैं उसकी बात भी पूरी तरह नहीं समझ सकता। बंगाली भी ऐसी जिसे दूर दराज के ठेठ गाँवों, देहात में बोला जाता होगा।

वक्त ऐसे ही गुजरता रहा। वर्ष-दर-वर्ष।

टुकड़े-टुकड़े सच किस्से, घटनाएँ छनकर आती रहीं। मुकम्मिल पूरी कभी नहीं।

पता लगा उसका नाम केया है।

खुद के साथ-साथ पड़ोसियों की आँखों का डर भी रहता। कहानी के चक्कर में मेरी भी चटखारेदार कहानी न बन जाए। फिर यह यकीन भी था कि मौका तो मिलेगा ही!

लेकिन अचानक ये खबर। उफ्फ!

मैं क्यों नहीं पूछ पाया वह सब। सारे प्रश्नों की चमगादड़ें मुझसे लिपट रही हैं।

क्या हुआ था? क्यों घर छोड़ना पड़ा? कैसे शादी हुई थी? बच्चे की याद आती होगी? वो कौन थी जिसे उसका आदमी जबरन घर ले आया था? सास-श्वसुर मोहल्ला, समाज? कोई कुछ नहीं बोला, फिर दिल्ली किसके साथ आई? प्लेसमेंट एजेंसी कैसे गईं?

बीच-बीच में, मैं बस इतना पूछ पाता था- 'आपका बेटा ठीक है।' उसकी आँखें जलती-बुझतीं। 'हाँ।'

'कभी चिट्ठी लिखता है?'

'फोन, फोन।' वो कानों पर हाथ रखकर बताती। बस।

'कभी दिल्ली आया?'

उसके होंठ सिल जाते।

बस फिर बंटी के बारे में शुरू हो जाती। मानो प्रसंग सिर्फ अपने एकांत के लिए है, पब्लिक के लिए नहीं। 'आज छुट्टी है बंटी की?'

'नहीं लेट जाएगा?'

'परीक्षा?'

कुछ शब्द मानो उसने दिल्ली में ही सीखे थे?

'कुछ दिनों बाद होगी?' मैं जवाब देता।

'गौरव की भी कुछ दिन बाद होगी। फिर वह हैदराबाद जाएगा नौकरी पर। उसकी नौकरी लग गई है। पर एक साल बाद जाएगा। बहुत होशियार है।'

उसकी आँखों की चमक बताती मानो अपने बेटे की बात कर रही है।

'आपका बेटा भी तो गौरव के बराबर है। उसकी भी नौकरी लगेगी। फिर उसके साथ रहना।' मैं उसकी उम्मीदों को पंख लगाता।

उसने मानो सुना ही न हो। 'गौरव के पापा का भी ट्रांसफर हो जाएगा। कलकत्ता जाएँगे।'

'और आप?'

उन्होंने खुले आसमान की ओर हथेलियाँ उलट दीं।

मैंने महसूस किया इस प्रश्न से मानो वे डर गई हैं।

चौधरी की बूढ़ी माँ जब तक जिंदा रहीं उसकी नौकरी पक्की ही नहीं, माँ के किसी भी बेटा, बेटी, पोती से ज्यादा जरूरी थी। बरसों-बरसों से बिस्तर पर पड़ी माँ का मरना जहाँ चौधरी परिवार के लिए एक बड़ी राहत थी वहीं केया के लिए जिंदगी की अनिश्चितता की शुरुआत, शायद केया इसे जानती होगी कि बुढ़िया को जिंदा रखने के लिए कितना जरूरी है। सर्दियों की ठिठुरती रात में पड़ोस के टायलेट से आवाजें

आती रहतीं। बंगला तो समझ में नहीं आती थी, लेकिन खटर-खटर से लगता कि माँ ने बिस्तर गंदा कर दिया है और वह अकेली ही सफाई में लगी है।

ऐसा रोज ही होता था।

बेटे ने केया को रखा ही इसलिए था। उनकी पत्नी को तो खुद अपना रूमाल भी धोते किसी ने नहीं देखा होगा, सास की सेवा वो क्या करती। पूरे रहन, सहन से वे किसी ऐसे जमींदार की बेटी लगती थीं जिसने जमीन पर पैर ही नहीं रखे हों।

शहर से लौटने पर एक दिन पता लगा कि चौधरी साहब की माँ नहीं रही। और भी ऐसी ही बातों की भिनभिनाहट कि नब्बे बरस की थीं और पिछले दस बरस से तो सब कुछ बिस्तर पर ही होता था। अच्छा हुआ, मोक्ष मिल गया। दिल्ली के इतने छोटे घरों में कितना मुश्किल है ऐसे बीमारों को झेलना, आदमी कहाँ तो खुद रहे और कहाँ बूढ़े माँ-बाप को। ये नौकरानी न होती तो कितना मुश्किल होता। कोई बहू नहीं उठा सकती गू-मूत। ऐसे काम तो नौकर-चाकर ही कर सकते हैं। मेरी पत्नी ने अपनी ओर से जोड़ा।

कई महीने बीते होंगे इस बात को। सर्दियों के अँधेरे भुकभुके में, मैं 'मॉर्निंग वाक' की रफ्तार में था। देखा केया एक बच्चे का स्कूल बैग पकड़े खड़ी है, बस के इंतजार में।

पहले तो पहचानने में दिक्कत हुई। कुछ अँधेरा, कुछ अचानक। लेकिन उससे ज्यादा निचुड़ा सा शरीर। पुरानी कद-काठी की एकदम आधी। उससे ज्यादा मानो वो अपने को छुपाने की कोशिश कर रही हो।

मेरे पैर फिर भी ठिठक गए। ठीक तो हो? यहाँ कैसे? मैंने तो सुना था कि घर वीरभूमि वापस चली गई हो।

उसके सिर्फ पहचानने भर को होंठ हिले। इस बीच स्कूल बस में बच्चे चढ़ने लगे। उसका सारा ध्यान बच्चे को बस में चढ़ाने में था। बस के जाने तक टुकुर-टुकुर देखता रहा।

'मैं अब यहाँ 'मानस सोसायटी' में हूँ। किसी को बताना नहीं। उसने उँगली से दो-दो बार इशारा करके मना किया।' मैं कुछ समझा, कुछ नहीं समझा। इससे आगे पूछने की हिम्मत नहीं हुई।

कई बार ऐसा होता है कि आप कुछ आँखों के भावों को और ज्यादा जानना चाहते हैं शायद वे आँखें भी बोलना चाहती हैं लेकिन इससे आगे बर्फ जमी रहती है। मैं मदद भी क्या कर सकता था? क्या उसे अपने घर ठिकाना दे सकता हूँ? यदि बीमार है तो क्या अस्पताल ले जा सकता हूँ? जब वह खुद ही अज्ञातवास में रहता चाहती है तो आग्रह कर भी कैसे सकता हूँ।

मैंने पत्नी को जरूर सब कुछ बता दिया सिर्फ यह सुनने के लिए कि दुनिया भर की महिलाओं से तो तुम्हें सिंपेथी है, अपनी पत्नी से नहीं। और जोड़ते हुए कि वैसे तो आपके पास बिल्कुल समय नहीं होता, इन बातों को कैसे सूँघते फिरते हो। सुबह-सुबह टहलने जाते हो या नैन मिलाने।

और वाकई एक दिन अचानक उसी बालकॉनी में नैन फिर मिल गए। वे पुराने दिनों की तरह ही अल्गनी पर कपड़े सुखा रही थीं। काले झकाझक बाल, बिखरे हुए। शरीर सूखकर जरूर काँटा हो गया था। पहचान से परे।

वे लौटकर फिर चौधरी के घर आ गई थीं। कैसे आईं? क्यों आईं? और क्यों चली गई थीं - ये प्रश्न अभी भी मेरे दिमाग में फड़फड़ा रहे हैं।

रविवार का दिन था। वे सामने के ब्लॉक में चौधरी की बहन को खाना लेकर जा रही थीं। इस बार उन्होंने पहल की। बिट्टू, बंटी ठीक हैं? आप ठीक हैं? इनकी बहन बीमार चल रही है। दोनों वक्त खाना पहुँचाती हूँ। दवा देने जाती हूँ। उसने शादी नहीं की। रेडियो की आर्टिस्ट है बहुत बड़ी। बहुत दिनों के बाद मुझे चेहरे पर रंगत लौटती दिख रही थी। वैसे ही जैसे पहले चौधरी की माँ की सेवा करते हुए दिखती थी। सेवा के लिए, जीने के लिए अब एक और मकसद जो मिल गया था।

अमीरों के चेहरे जिस सेवा शब्द से कुम्हला जाते हैं, रोजी-रोटी की खातिर गरीबों के उतने ही तृप्त।

'ठीक हो जाओ अब। बहुत कमजोर हो गई हो आप?'

उनकी आँखों में आँसू ढुलक गए। वो खाना नहीं देती थी। एक भी दिन मछली, मांस कुछ नहीं। सब कुछ खुद ही खा जाते थे। घर से भी नहीं निकलने देते थे। कभी-कभी मारते भी थे। डर भरी नजरों से इधर-उधर देखती हुई वे सिसकने लगीं।

कहीं मेरी नजर से चौधरी को कोई गफलत न हो मैंने बात को तुरंत समेटा। 'कोई बात नहीं। अब सब ठीक हो जाएगा।'

हुआ शायद यह कि माँ के मरने के बाद ऐसी नौकरानी का क्या हो तो उसे जाने के लिए कह दिया गया। लेकिन वह जाती कहाँ - वीरभूमि? जहाँ से उसके पति ने खदेड़ दिया था। चितरंजन पार्क? आखिर वहाँ गई तो प्लेसमेंट एजेन्सी की बदौलत फिर इसी एरिया में भेज दिया गया।

अपने पुराने घोंसले चौधरी के घर को, उसकी स्मृतियों को वह जिंदा भी रखना चाहती थी और दूर भी भागती थी।

क्यों न भागे? जब तक माँ के लिए जरूरत थी, ऐसे काम के लिए जिसे खूनी रिश्ते तो कदापि नहीं करते, उसे रखा गया। एक दिन के लिए भी कहीं नहीं जाने दिया गया। 'बूढ़ी माँ के खत्म होते ही मानो उसे भी बुढ़िया के पुराने लत्ते, कपड़े, पलंग बिछौना के साथ बाहर कर दिया गया।'

गौरव सिर्फ सात साल का था जब वे इस घर में आई थीं। बिल्कुल अपने बेटे की उम्र का।

अंदर ही अंदर मानो वे अपने बेटे को बड़ा होते देख रही थीं। 'गौरव अब टी.वी. बंद करो। होमवर्क करो। ये गीले मोजे हैं, इन्हें मत पहनो। कभी बालकॉनी में गौरव की मालिश कर रही हैं, कभी उसके साथ बंगाली में बातचीत।'

क्या बच्चों पर सिर्फ उनके जन्म देने वाली माँ का ही अधिकार होता है, उन्हें खिलाने पिलाने वाले नौकर, चाकरों का कुछ नहीं?

एक दिन उसने बताया था कि जब चली गई थी, तो गौरव की बहुत याद आती थी। मैं उसे दूर से देखने की कोशिश करती थी। अब कभी नहीं जाऊँगी।

अस्पताल में पड़ी केया की पुतलियों में क्या पता गौरव की यादें भी रही हों।

दिल्ली जैसे शहरों में परिचय के अंतिम लैंप पोस्ट होली, दीवाली अभी भी कुछ भूमिका निभा रही है। उसी दिन पता चला कि केया कई महीनों से बीमार है। शरीर सूज गया था। यहाँ से पहले चित्तरंजन पार्क गई। वहाँ से उनका भाई गाँव छोड़ आया है।

अमीर बीमार होते हैं तो दिल्ली पहुँचते हैं। गरीब दिल्ली में भी बीमार हों तो शहर छोड़ देते हैं। ये शहर जीने के लिए तो मजदूरी का जुगाड़ कर सकते हैं बीमारी में दवा का नहीं। ये बड़े-बड़े अस्पताल ऑल इंडिया मेडिकल साइंस, मैट्रो अस्पताल सिर्फ बड़े पैसे

वालों के लिए हैं। गरीब को गाँव में ही मरना है। अपनों के बीच मरने की तसल्ली तो है।

चौबीस घंटे भी नहीं होंगे उनकी बीमारी की खबर मिलने के कि मालकिन ने बताया केया खत्म हो गई। अभी फोन आया है। वे कंघी से बाल सँवारती जा रही थीं।

गौरव भी साथ खड़ा था।

माँ-बेटे के चेहरे से कहीं नहीं लग रहा था किसी मौत की सूचना दे रही हैं।

'अरे! कल ही तो पता चला कि बीमार है।'

'हार्ट का आपरेशन करना पड़ा। दिल की सफाई की, एंजियोप्लास्टी की। उसी में खत्म हो गई। यहाँ भी उसकी तबियत ठीक नहीं रहती थी। उसके दिल में सूराख था। उसे चढ़ने-उतरने में साँस फूल जाती थी।'

'लेकिन वो तो बार-बार चौथी मंजिल से उतरकर बाजार जाती थी। चौधरी साहब की बहन को खाना पहुँचाने के लिए भी तो उसे तीसरी मंजिल पर चढ़ना पड़ता था।'

मालकिन को कोई जवाब नहीं सूझा। शायद अंदर इस जवाब को सोख गई हों कि नौकर काम के लिए रखे जाते हैं, इलाज के लिए नहीं।

'किसने बताया।'

'उसके भाई का फोन आया था।'

कौन था उस समय उसके पास? क्या बेटा था? पति तो क्या ही होगा? क्या उम्र थी इनकी? मैंने कुछ प्रश्न बुदबुदाए कुछ नहीं और वापस कमरे में बैठ गया।

क्या-क्या घटा होगा?

कौन रहा होगा अंतिम क्षणों में उसके पास?

उसका नौजवान बेटा जिसे पंद्रह बरस पहले पाँच वर्ष की उम्र में छोड़ना पड़ा था। क्या बचा होगा माँ-बेटे का संबंध? कभी-कभी जाती तो थीं लेकिन अपने गाँव वीरभूमि जाती थीं या दिल्ली में ही चित्तरंजन पार्क में रह रहे अपने भाई संबंधियों के पास। बेटा पिता ने अपने पास रखकर माँ को घर से निकाल दिया था। कोई भी औरत क्यों

बर्दाश्त करती? पति ने एक औरत को घर में रख लिया था। इसने बखेड़ा किया तो घर से बाहर हाँक दी गई।

भुगतना औरत को ही पड़ता है। तालिबान हो या कोई और नाम। पचास की उम्र भी कोई उम्र होती है? बूढ़े अमीरों की उम्र के लिए कितने गरीबों को अपनी उम्र कुरबान करनी पड़ती है। इनके कष्ट और कराह कौन सुनता है? मैं फिर बालकॉनी में आकर खड़ा हो गया हूँ - उधर देख रहा हूँ जहाँ ठहरकर वे टूटी-फूटी बंगला, हिंदी में हाल-चाल पूछती थीं। अपने बताती थीं, डरते-डरते। मालकिन की पदचाप से वे भी पीछे हट जाती थीं जैसे मैं। अगली बार के इंतजार में।

शाम को वे कभी-कभी मालकिन के साथ सब्जी, सामान का भारी थैला लादे मिलतीं। मैं सोचता कि कई मालकिनों से उनकी नौकरानियाँ कितनी अच्छी हैं। गुदड़ी में लाल। एक चेहरा खुदा के इशारे से रानी, महारानी, कहलाने लगता है और कभी उससे भी सुंदर नौकरानी, डायन न जाने क्या-क्या।

बाअदब सबसे नमस्ते करती। मालकिन ठीक ही कह रही है उसे सब जानते थे सब्जी वाला, दूधवाला, चौकीदार...।

शहर की जिंदगी भी एक विचित्र संयोग-वियोग है। कई चेहरे दिखते हैं फिर कभी न दिखने के लिए गायब हो जाते हैं। कोई मकान छोड़कर चला जाता है, कोई दुनिया। लेकिन दुनिया फिर भी चलती रहती है।

मुझे उसकी सपनीली आँखें दिखाई दे रही हैं। अस्पताल के एक कोने में अर्धचेतन। आपरेशन हो चुका है। डॉक्टर, सिस्टर के साथ राउंड पर था। सिस्टर ने आवाज लगाई। बेड नं.103। अरे कौन है इनके पास? इन्हें तो कल शाम को ही बेड खाली करना था। सिस्टर मानो डाक्टर को खुद सफाई दे रही है। सिस्टर ने झुककर केया की आँखों में झाँका फिर हाथ के इशारे से पूछा, कहाँ हैं सब? कौन है आपके साथ?

दिली (दिल्ली)?

'दिल्ली नहीं, यहाँ कौन है आपके साथ?'

कोई हो न हो सपने तो होंगे ही इन पुतलियों में। क्या सपनों पर हक सिर्फ अमीरों का है।

क्या प्रेम, स्नेह, याचना भरी वे आँखें कभी नहीं दिखाई देंगी? मैं उन्हीं आँखों से क्षमा माँग रहा हूँ। एक लेखक के नाते भी। आपसे आपकी व्यथा भी नहीं सुन पाया? आप बहुत कुछ कहना चाहता थीं। वक्त, हिम्मत, धैर्य नहीं था तो सिर्फ मेरे पास। आँखें मुँदते वक्त यदि मैं भी पल के लिए स्मृतियों में आया हूँ तो ईश्वर! मुझे माफ करना।